P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-12* (Part-2) March- 2019
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

जनपद चमोली गढ़वाल के भोटिया जनजाति में ऋतुकालीन प्रवास के साथ बीमारी के उपचार में परिवर्तन

के.के. बंगवाल
अतिथि व्याख्याता,
मानव विज्ञान विभाग
एस0आर0टी0 परिसर
बादशाहीथौल, टिहरी गढ़वाल,
उत्तराखण्ड, भारत

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र जनपद चमोली गढ़वाल की भोटिया जनजाति में ऋतुकालीन प्रवास के साथ बीमारी के उपचार में परिवर्तन से सम्बन्धित है। यह जनजाति ग्रीष्मकाल के दौरान ऊँचाई वाले स्थानों भारत–तिब्बत सीमा तथा शीतकाल के दौरान निचली घाटी वाले स्थानों में निवास करते हैं। ग्रीष्मकालीन गांव मैती या मूल गांव तथा शीतकालन गांव गुनसा के नाम से जाने जाते हैं। यह जनजाति ऋतुकालीन प्रवास के दौरान अपने पशुधन, खाद्य सामग्री आदि के साथ उपचार सम्बन्धी सामग्री सहित विभिन्न पड़ाओं से होकर गुजरते हैं। ग्रीष्मकालीन आवास क्षेत्रों की अपेक्षा शीतकालीन क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधायें कम हैं जिसके कारण लोग अपने पारम्परिक चिकित्सा का सहारा लेते हैं। प्रवासी जीवन में भौगोलिक परिवर्तन के साथ इनके लोक विश्वास, अभ्यास एवं उपचार के तौर–तरीकों, खान–पान व जीवन यापन शैली में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।

मुख्य शब्द : भोटिया जनजाति, ऋतुकालीन प्रवास, ग्रीष्मकालीन, शीतकालीन, आवास, बीमारी, उपचार।

प्रस्तावना

भोटिया जनजाति उत्तराखण्ड प्रदेश के गढ़वाल एवं कुमायूँ मण्डल में निवास करती है। यह जनजाति कुमायूँ मण्डल में शौका, दारमी व जौहारी तथा गढ़वाल मण्डल में तोल्छा, मार्छा व जाड़ नाम से जानी जाती है। जाड़ भोटिया जनपद उत्तरकाशी एवं तोल्छा व मार्छा जनपद चमोली गढ़वाल में निवास करते हैं। भोटिया जनजाति का खान–पान, रहन–सहन, भाषा, वेश–भूषा, संस्कृति आदि में एक विशिष्ट पहचान है। इस जनजाति के ग्रीष्मकालीन आवास तिब्बत की सीमा से लगे हुए है जिसे भोट के नाम से भी जाना जाता था और इस क्षेत्र में निवास करने वालों को भोटिया कहा गया। यह जनजाति ग्रीष्मकाल के दौरान अपने पारम्परिक गांव जो कि तिब्बत की सीमा से लगे हुए हैं में निवास करते हुए तिब्बत से यहां आवश्यकताओं की सामग्री लाते थे और शीतकाल के दौरान जनपद चमोली गढ़वाल की निचली घाटियों में निवास करते हुए तिब्बत से आयातित वस्तुओं का गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापार करते थे। इस प्रकार अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए काफी परिश्रम करते रहे। किन्तु तिब्बत के साथ व्यापार बन्द होने इनकी अर्थव्यवस्था डगमगायी है। यह जनजाति अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए ऋतुकालीन प्रवास करते है जिसके कारण इनका अधिकांश जीवन शीत वातावरण में यापन होता है जो कि स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। साथ ही ऋतु प्रवास से इनके खान–पान, रहन–सहन आदि में भी परिवर्तन आता है जिसके कारण भी अस्वस्थ होना स्वभाविक है। इनके ऋतुकालीन प्रवास क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधा की कमी भी देखने को मिलती है। यह जनजाति स्वास्थ्य लाभ हेतु विभिन्न प्रकार की जड़ी–बूटियों का सहारा लेते हैं साथ ही वह सभी पारम्परिक सांस्कृतिक क्रियाकलाप भी किये जाते हैं जो स्वास्थ्य लाभ में किसी न किसी रूप में लाभदायी होते हैं।

साहित्यावलोकन

भोटिया नाम दिये जाने के संदर्भ में विद्वान एक मत नहीं हैं बल्कि उनके अलग–अलग विचार हैं। भोटिया क्षेत्र को भोट क्यों कहा जाने लगा तथा भोट शब्द की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इस सन्दर्भ में कुछ लेखकों के विचार इस प्रकार हैं–

सीमावर्ती तिब्बत के क्षेत्र में निवासित हुणियां अथवा हूना जनजाति के सदृश्य ही भोटिया जनजाति उत्तराखण्ड में निवास करती है (एटकिन्सन, 1974:270)। तिब्बत के पठार के दक्षिण में महा हिमालय की उत्तरी ढालों

जन्सकर श्रेणियों के बीच उत्तरी सीमान्त की बीहड़ घटियों के निवासी भोटान्तिक भोटिया तो किरात वंशी हैं ही, साथ ही महा हिमालय की दक्षिण ढालों के कुछ खडवालों में भी किरात जाति के वंशज मिलते हैं (डबराल, 1958:34–35)। एटकिन्सन (1974:279) ने इस जनजाति को आर्य वंशज भी माना है। ग्यारहवीं सदी के तातरी अभिलेखों में तिब्बत के लिए तू–उ–पोते शब्द आया है जिसके अन्तिम चरण का उच्चारण बोद् होता है, स्वयं तिब्बती अपने को बोदू–पा अर्थात् बोदू प्रदेश के निवासी कहते हैं (वाल्टन उद्धृत जोशी, 1983 : 13)। तिब्बत का प्राचीन स्थानीय नाम बोध/बोद था, यहां से आये इस जनजाति के सदस्यों को भोटिया कहा जाने लगा (एटकिन्सन, 1974 : 459)। यह कहा जा सकता है कि जनजाति का बोदू–प्रदेश(तिब्बत) की सीमा पर निवास होने के कारण इस क्षेत्र को भोटान्त तथा क्षेत्रवासियों को भोटन्तिक नाम से पुकारा जाने लगा होगा। इस प्रकार बोदू–पा से भोटान्त तथा भोटान्तिक शब्द से ही भोटिया शब्द की उत्पत्ति मानी जा सकती है। यह भोटान्त क्षेत्र इस जनजाति के ग्रीष्मकालीन आवास क्षेत्र हैं। निचली घाटियों से अप्रैल–मई माह मे इन ग्रीष्मकालीन क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं तो लगभग इसी समय यहां पर बर्फ पिघलती है जिस कारण यहां का मौसम ठन्डा रहता है तथा शीतकाल के दौरान निचली घाटियों के निवास स्थानों में वातावरण शीत होना स्वाभाविक है अर्थात इन लोगों का अधिकांश समय शीत वातावरण में व्यतीत होता है जिससे भी इनका स्वास्थ्य प्रभावित होना स्वभाविक है।

विद्यार्थी (1975) ने विभिन्न आदिवासियों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को वर्णित किया है। जोशी (1983) एवं पांगती (1992) ने अपने अध्ययन में भोटिया जनजाति के खान–पान, रहन–सहन, व्यापार आदि पक्षों के साथ सभी सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक कुछ पक्षों विस्तृत एवं कुछ को आंशिक रूप दर्शाया है। बंगवाल (2000) का कार्य विशेष रूप से जनपद चमोली गढ़वाल की भोटिया जनजाति की परम्परागत चिकित्सा प्रणाली से सम्बन्धित लोक विश्वास, अम्यास एवं बदलती दिशाओं से सम्बन्धित है। इनके अध्ययन में इस जनजाति का ऋतुकालीन प्रवास सम्बन्धी विवरण भी सम्मिलित है। मुथारायप्पा (2000) ने मैसूर की जनजातीय जन्मदर, मृत्युदर एवं स्वास्थ्य की देखभाल सम्बन्धी अध्ययन किया। नास्वा (2001) ने उत्तर प्रदेश एवं उत्तरांचल की जनजातियों का संक्षिप्त अध्ययन के साथ सन्दर्भग्रन्थ सूची को एकत्रित किया। वदाकुमेचेरी (2003) का कार्य मध्य भारत की जनजातियों के सांस्कृतिक पारिस्थितिकी से है जिसमें प्रकृति के साथ इनके घनिष्ठ सम्बन्धों को दर्शाया गया है। चौहान (2009) ने भारत की जनजातियों के साथ उत्तराखण्ड की जनजातियों के विभिन्न पक्षों को आंशिक रूप से दर्शाया है। हसनैन (2010) ने भारत की विभिन्न जनजातियों के विभिन्न पहलुओं को दर्शाया गया है। यह कार्य इस अध्ययन के लिए दिशा निर्देशन के रूप में रहा है।

उद्देश्य एवं शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र जनपद चमोली गढ़वाल की भोटिया जनजाति में ऋतुकालीन प्रवास के साथ बीमारी के उपचार में परिवर्तन मुख्य उद्देश्य है। इसके अन्तर्गत ऋतुकालीन प्रवास के ग्रीष्मकालीन तथा शीतकालीन आवास क्षेत्रों में स्वास्थ्य समस्या के समाधान हेतु प्रयुक्त उपचार सम्बन्धी सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन को भी उद्देश्य में सम्मिलित किया गया है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साक्षात्कार व अवलोकन शोध विधियों को उपयोग में लाया गया है।

परिणाम एवं चर्चा

गढ़वाल एवं कुमायूं सीमा का वह भाग जो तिब्बत सीमा से लगा हुआ है और जहां के निवासी सदियों से भारत–तिब्बत के मध्य विनिमय व्यापार करते रहे किन्तु भारत–चीन के सम्बन्ध अच्छे न होने के बाद से सदियों से चला आ रहा व्यापार समाप्त हो गया था किन्तु अब इसे खोलने की नई पहल की गयी है। भारत–तिब्बत सीमा से लोगों की मंगोल मुख मुद्रा तथा सामाजिक–सांस्कृतिक विशिष्टताओं के कारण अंग्रेज प्रशासकों ने भोटिया नाम दिया (पांगति, 1992) तथा विद्यार्थी(1975 : 245) ने इन्हें मंगोल मुख मुद्रा के रुप में माना है। लक्षणों के आधार पर इस जनजाति का शारीरिक गठन एवं मुखाकृति मंगोलियन मूल उत्पत्ति को दर्शाते हैं। भारत सरकार द्वारा सन् 1967 में भोटिया समुदाय को जनजाति का दर्जा दिया गया। जनजातियों के विकास के लिए सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की योजनाएं एवं कार्यक्रम समय–समय पर चलाये जाते हैं, जिससे इनके सामाजिक–आर्थिक जीवन में परिवर्तन आया है।

जनपद चमोली गढ़वाल के भोटान्तिक क्षेत्र में भोटिया जनजाति के दो मारछा एवं तोलछा समूह निवास करते हैं। भोटिया जनजाति की बोली में 'मर' शब्द का अर्थ 'घी' तथा 'छा' शब्द का अर्थ नमक के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह जनजाति सदियों से तिब्बत के साथ अन्य सामग्री के साथ विशेषरूप से घी और नमक के व्यापारी रहे। नमक और घी का व्यापार करने वाले मारछा कहलाए एवं मारछा भोटिया इस बात को स्वीकार करते हैं कि वे नमक और घी के व्यापरी भी थे। मारछा भोटियाओं द्वारा तिब्बत से लाए गए नमक आदि को निचली पट्टियों में जाकर बेचने वाले तोरछा/तोलछा कहलाए (जोशी, 1983 : 18)। गढ़वाली और कुमाऊँनी बोली में छ या छयो शब्द दिशा पंक्ति को निर्दिष्टि करता है तथा 'तल' शब्द निचले व 'मल' शब्द ऊपरी के अर्थ में व्यवहृत होता है। इस प्रकार मालछयो (ऊपर की ओर) से मारछा और तलछयो (नीचे की ओर) से ही तोलछा शब्द क्रमशः ऊपर वाली पटिट्यों एवं निचली पट्टियों में रहने वाले लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा (गैरोला, उद्घृत जोशी, 1983:18)। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उक्त मुख्य व्यापारिक सामान घी, नमक तथा ऊपर व नीचे के निवास स्थान पर रहने से इन्हे मारछा एवं तोल्छा नाम से पुकारा जाने लगा होगा।

चमोली गढ़वाल के तोलछा भोटिया अपने को मारछा एवं उत्तरकाशी जनपद के जाड़ भोटियाओं से उच्च कोटि के मानते हैं। मारछा एवं जाड़ भोटिया इस बात को मूक रुप से स्वीकार करते हैं। तोलछा भोटियाओं के पास भोटियाओं की अपेक्षा कृषि भूमि अधिक होने के कारण

स्वयं को उच्च कोटि का मानते होंगे, साथ ही साथ पूर्वकाल में मारछा एवं तोलछाओं का एक–दूसरे के साथ विवाह न होने की परम्परा थी किन्तु वर्तमान में यह परम्परा लगभग समाप्ति की ओर है।

ऋतुकालीन प्रवास

भोटिया जनजाति अपने व्यवसाय एवं परम्परिक रीति–रिवाजों के अनुरूप ग्रीष्मकालीन एवं शीतकालीन प्रवास करते हैं। ग्रीष्मकालीन गांव भारत–तिब्बत सीमा पर स्थित हैं जिसे भोटान्तिक या भोटान्त के नाम से भी जाना जाता है। भोटान्तिक प्रदेश का 75 प्रतिशत से भी अधिक भाग वर्षपर्यन्त हिम रेखा से ऊपर और इसमें 25 प्रतिशत से अधिक अति विशाल हिमानियाँ फैली हुई हैं (वाडिया, 1963:14)। एटकिन्सन (1974:84) के अनुसार इस क्षेत्र का 24 प्रतिशत भाग लगभग छः माह तक हिमाच्छादित रहता है और लगभग एक प्रतिशत भाग वर्षपर्यन्त हिम मुक्त रहता है। यह क्षेत्र लगभग वर्षभर में आधे समय हिमाच्छादित रहता है जिसके कारण यहां से प्रवास करना आवश्यक हो जाता है।

भोटिया जनजाति ग्रीष्मकाल के दौरान अपने पैतृक निवास क्षेत्र भोटान्तिक प्रदेश या भोटान्तिक क्षेत्र जो कि तिब्बत सीमा पर स्थित में निवास करते है यह क्षेत्र उबड़–खाबड़, नंगी चट्टानों व हिमाच्छादित वाला क्षेत्र है जो कि शीतकाल के दौरान लगभग छः माह बर्फ से ढ़का रहता है। शीतकाल के दौरान यह क्षेत्र जीवन यापन के लिए अनुकूलित नहीं रहता है जिसके कारण इस जनजाति को जीवन यापन हेतु निचली घाटियों की ओर प्रवास करना पड़ता है। यह माह अप्रैल–मई से माह अक्टूबर–नवम्बर तक मैत(पारम्परिक निवास स्थान) में निवास करते हैं तथा शेष समय जनपद की निलची घाटियों में जीवन यापन करते हैं। इनके अधिकांश गांव लगभग नदियों के निकट बसे हुए हैं। नदियों के निकट बसने का यह भी करण हो सकता है कि स्वयं एवं पशुओं की जलापूर्ति हो सके। तिब्बत के साथ व्यापार बन्द होने के पश्चात से इन लोगों का पारम्परिक मुख्य व्यवसाय भेड़–बकरी पालन तथा ऊन उद्योग रह गया है।

जनपद चमोली गढ़वाल की भोटिया जनजाति नीति तथा माण क्षेत्र के पारम्परिक गांवों में न्रिवास करते हैं। जो कि लगभग 8000–11000 फीट से अधिक ऊँचाई तक भी स्थित हैं। ऊँची पर्वत श्रृखलाएँ होने के कारण एक घाटी के लोग दूसरी घाटि के लोगों बहुत कम अवसरों पर मिल–जुल पाते हैं। उच्च शिखरीय आवास क्षेत्र को पयार या मैत तथा निचली घाटि के आवास क्षेत्र को गुनसा या गंगाड़ भी कहा जाता है। यह ऊँचाई वाले क्षेत्र व्यापार एवं पशुचारण के लिए लाभदायी रहे हैं। इस क्षेत्र में पशुचारण हेतु बुग्याल हैं जिनका कि वर्तमान में भी चरान हेतु उपयोग किया जाता है।

शीतकाल के दौरान जनपद की निचली घाटियों के शीतकालीन आवासों (पड़ाव) में निवास करते थे तथा इन पड़ावों की संख्या 43 थी (चौहान, 1999:92–93)। इन गुनसा या गंगाड़ी क्षेत्र के गांवों निवास के दौरान जनपद के स्थानीय एवं अन्य क्षेत्र के लोगों के साथ तिब्बत से लायी हुइे वस्तुओं जैसे– घी, नमक,ऊन, भेड़–बकरी, सुहागा इत्यादि का व्यापार करते थे किन्तु वर्तमान मे यह लोग स्थानीय स्तर पर अपने द्वारा निर्मित ऊनी सामान का व्यापार करते हैं। ये लोग इस पड़ाव स्थलों में झोपड़ियाँ निर्मित करके निवास करते थे जो कि स्थानीय एवं बाह्य क्षेत्र के लोगों के साथ व्यापारिक केन्द्र के रुप में हैं किन्तु वर्तमान में इन पड़ाव स्थलों पर स्थाई मकान निर्मित हो गये हैं। इसका मुख्य कारण तिब्बत के साथ व्यापार का बन्द होना भी है। इनके शीतकालीन गांव नदी घाटियों के निकट तथा ग्रीष्मकालीन गाँव नीति व माणा घाटी में स्थित हैं।

नीति व माणा घाटी के ग्रीष्मकालीन व शीतकालीन गाँव

इस जनजाति के पारम्परिक आवास नीति तथा माणा घाटी में स्थित हैं। यह लोक ग्रीष्मकाल के दौरान एक गांव में निवास करते हैं जब कि उसी गांव के लोग निचली घाटियों में अलग–अलग गांवो में निवास करते हैं (चौहान 1999:92–93)। जिनका विवरण इस प्रकार है (ग्रीष्मकालीन गांवों के आगे कोष्ठक के अन्दर शीतकालीन गांव दर्शाये गये हैं)– नीति घाटी के गांव 1. नीती (कौड़िया, भीमतला) 2. गमशाली (बौंला, चमेली, सेमला, मठ) 3. बाम्पा (छिनका) 4. फरकिया (तिफन्ना, गंगरौली, गुन्याली) 5.कैलाशपुर (बाजपुर, कुहेड़) 6. महरगांव (सेमला, सेलवानी) 7. मलारी (बालखीला, देवलीबगड़) 8. कोसा (डिडोंली, गंगरोली, सोनला) 9.जेलम (नन्दप्रयाग, बागमुण्डा, डिडोंली) 10.जुम्मा (कर्णप्रयाग, लंगासू, काल्द) 11. द्रोणागिरी (मठियाला, घुरसारी) गरपक (बिहरी, गतूण) हैं तथा 1. माणा (घिंघराणा, नैग्वाड़) 2. इन्द्रधारा (सिरोखोमा) 3.गजकोटि (सेंटुणा) 4.औत (नरों, सिरोखोगा) माणा घाटी के गांव है।

ऋतुकालीन प्रवास एवं व्यापारिक सम्बन्ध

शीतकाल के आरम्भ होने पर इस जनजाति के लोग अपने गृहस्थ जीवन सम्बन्धी सामग्री, व्यापारिक माल व भेड़–बकरियों आदि पशुओं सहित गंगाड़ अर्थात शीतकालीन गांवों की ओर प्रवेश करते थे। व्यापारिक माल को घोड़े, भेड़–बकरियों में लदकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक व्यापार फांचा (थैलों) पर रखकर ले जाया जाता था। तिब्बत से लाये गये व्यापारिक माल को गढ़वाल मण्डल के विभिन्न क्षेत्रों में बेचते थे। इस व्यापार में परिवार के कुछ ही लोग भागीदार बनते तथा शेष लोग शीतकालीन आवास में निवास करते थे। इस जनजाति ने अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए कठिन परिश्रम व संघर्षमय जीवन यापन किया। वर्तमान समय में यह लोग पशुपालन एवं गृह ऊन उद्योग को अपनाये हुए है किन्तु वर्तमान पीढ़ी पारम्परिक व्यवसाय के प्रति उदासीन होती जा रही है।

ऋतुकालीन प्रवास का मुख्य कारण तिब्बत एवं गढवाल मण्डल आदि क्षेत्रों में व्यापार से भी रहा है। ग्रीष्मकाल में यह तिब्बत के साथ व्यापार करते थे तथा इस व्यापारिक माल को शीतकाल के दौरान गढ़वाल के विभिन्न क्षेत्रों में बेचते थे। यह व्यापारिक प्रणाली अर्थव्यवस्था तथा विनिमय पर आधारित रही है। इस जनजाति के लोग तिब्बती लोगों की आवश्यकता का सामान स्थानीय लोगों से विनिमय के आधार पर एकत्रित करते थे जिसे ग्रीष्मकाल के दौरान तिब्बती लोगों को देते थे। भोटिया लोग व्यापार के दौरान व्यापारिक मित्र बनाते

थे जो कि व्यापार में मददगार के रूप में कार्य करते थे। व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने पर कुछ नियम कानूनों का पालन एक दूसरे व्यापारी को करने पड़ते थे जिसमें गमग्या, सिंगच्याद, कुंडाख्यार आदि विशेष हैं। गमग्या एक लिखित पत्र जिसमें दोनों पक्षों के हस्ताक्षर, अगूठा निशान होता है जो वर्तमान स्टांप पत्र की तरह है। इस पत्र में शर्त निर्धारित होती हैं जो इसके अनुसार मित्रता नहीं निभाता वह दण्ड का भागीदार होता। इस पत्र के साथ पहचान युक्त पत्थर के टुकड़े रखते है जिन्हें व्यापार के दौरान दिखाना आवश्यक है।

सिंगच्याद प्रथा में एक लकड़ी के दो टुकड़े करे एक टुकड़ा तिब्बती व एक भोटिया व्यापारी के पास रहता किसी प्रकार का सन्देह होने पर एक दूसरे के टुकड़े को दिखाकर सन्तुष्टि होने पर व्यापार किया जाता था। कुंडाख्यार प्रथा में धार्मिक पुस्तक या किसी देवता सम्बन्धी मूर्ति सिर में रखकर शपथ ली जाती और व्यापारिक मित्रता स्थापित की जाती अर्थात आस्था को सर्वोपरी माना गया है। इस प्रकार व्यापारिक सम्बन्धों को स्थापित करने के लिए लिखित शपथ, प्रमाणिकता, आस्था–विश्वास आदि को आधार माना गया।

तिब्बत सरकार द्वारा भोटिया व्यापारियों से विभिन्न प्रकार के टैक्स लिये जाते थे जिसमें से पूलागाल (ऊन पर लिया जाने वाला टैक्स), सेलुकोठाल (भेड़–बकरियों पर लिया जाने वाला टैक्स), छाठाल (नमक पर लिया जाने वाला टैक्स) आदि मुख्य हैं। यह टैक्स रूपये–पैसे व अनाज के रूप में दिया जाता था। व्यापार बन्द होने से व्यापारिक सम्बन्ध एवं व्यापारिक मित्रता भी समाप्त हुई।

ऋतुकालीन प्रवास एवं बीमारी के उपचार में परिवर्तन

ऋतुकालीन प्रवास के साथ जलवायु में परिर्वन आता है जिसका असर शरीर पर पड़ना स्वाभाविक है। यह जनजाति बीमारी के मुख्यरूप से तीन प्राकृतिक, अलौकिक व मानवीय कर्मकों के कारण मानती है। प्रकृतिक कारक के अन्तर्गत वातावरणीय परिवर्तन, सूक्ष्मजीव इत्यादि आते है जो बीमारी के लिए जिम्मेदार होते हैं। यह देखा गया है कि जब यह लोग ग्रीष्मकालीन क्षेत्रों नीति तथा माणा घाटी में जीवन यापन करते हैं तो उस समय भी यह क्षेत्र बर्फ पिघलने के कारण ठन्डा रहता है और जब यह निचली घाटियों में प्रवेश करते हैं तो उस दौरान शीत वातावरण रहता है। इस प्रकार यह जनजाति शीत वातावरण के साथ अधिक समय व्यतीत करते हैं। अधिक शीत वातावरण मे जीवन यापन स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक माना जाता है। आयुर्वेद में भी वात, पित्त एवं कफ की चर्चा की गयी है। ठन्डा एवं गर्म को बीमारी का कारण भी माना जाता है। अधिक ठन्ड में जीवन यापन करने से वायु वात रोग जैसे गठियावायु, सिर दर्द, जोड़ों में दर्द, खासी–जुकाम आदि होते हैं जिनका समय रहते उपचार न किया जाय तो वह गम्भीर समस्या उत्पन्न करती है।

ग्रीष्मकालीन गांव शीतकाल के दौरान हिमाच्छादित रहते हैं जिसमें लगभग छः माह जीवन यापन करना सम्भव नहीं है। इस जनजाति का मानना है कि इन छः माह में यह क्षेत्र जन शून्य होने के कारण यहां पर भूत–प्रेत वास करने लगते हैं और यदि भूत–प्रेत को भगाने का उपाय किया जय है तो यह अपने प्रभाव या छौल से से प्रभावित कर व्यक्ति को अस्वस्थ करते है। इस लिए इन अलौकिक शक्तियों पर काबू करने के लिए विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक क्रियाकलाप किये जाते हैं।

रगोसा फरौण

रगोसा फरौण या चढ़ाने का रिवाज ग्रीष्मकालीन गांवों में सम्पन्न होता है। यह क्रियाकलाप भूत–प्रेत को भगाने का साधन है। यह प्रथा प्रति वर्ष ग्रीष्मकालीन गांवों में प्रवेश के सूरूवाती दिनों में किया जाता है। लोगों का विश्वास है कि शीतकाल के दौरान लोग इन आवास क्षेत्रों में निवास नहीं करते हैं। इस समय गांव के निकट भूत–प्रेत प्रवेश करते हैं और जब इन आवासों में लोग निवास करने लगते हैं तो इन अलौकिक शक्तियों के प्रभाव से बचने के लिए खाद्य सामग्री के रूप में रगोसा चढ़ाया जाता है। प्रत्येक घर से एक कोदे की इखारू (एक तरफ पकी एक तरफ कच्ची) रोटी शनिवार या मंगलवार को एक पुरानी कण्डी रखकर लाल रंग का झण्डा बांधकर कुछ लोगों के द्वारा गांव के चारों ओर घुमाकर गांव से दूर ऊँचे स्थान पर रखा जाता है। पूर्व में इखारू रोटू के साथ कोदे के आटे का हलवा, काली दाल की खिचड़ी आदि चढ़ाई आदि चढ़ाया जाता था। पूर्व में उक्त क्रियाकलाप के साथ कुत्ते को भी गांव के चारों ओर घुमाकर, जहां पर उक्त सामग्री रखी जाती है से कुत्ते को गिराया जाता था। लोगों का मानना है कि ऐसा करने से लोग बीमार नहीं होते हैं। वर्तमान में प्रवास की दर में कमी आने से इस परम्परा में भी परिवर्तन आया है।

डोली चढ़ाना

ग्रीष्मकालीन गांवों में डोली चढ़ाने की परम्परा प्रत्येक वर्ष अपनाई जाती है। यह परम्परा परिवार स्तर या गांव स्तर पर सम्पन्न होती है। एक टोकरी व कण्डी पर रंगीन कपड़े बांधकर इसमें मीठे पकवान जैस मीठी रोटी, मीठे चावल, हलवा, लाडू, महिला श्रृंगार सामग्री, फूल, पिठांई, धूप, दीप आदि को ऐड़ी–आछरियों का नाम स्मरण करते हुए गांव से दूर ऊँचे स्थान पर रखते हैं। यह माना जाता है कि ऐड़ी–आछरी ऊँचे स्थानों एवं पर्वत श्रृखलाओं पर निवास करती है जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़कर जाती हैं। यह नौ बहनों का एक झुण्ड के रूप में रहती हैं। यह माना जाता है कि इनको चटकीले–भड़कीले एवं रंग–बिरंगे कपड़े पसन्द हैं। यदि कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के कपड़े पहनकर ऊँचाई वाले स्थानो पर विचरण करता है तथा तेज आवाजे करता है तो उन पर ऐड़ी आछरी का प्रभाव होता है और वह अस्वस्थ हो जाते हैं। शीत काल के दौरान ग्रीष्मकालीन आवास क्षेत्र जन शून्य रहते हैं जहां इस दौरान ऐड़ी–आछरी (परियां) स्वतन्त्ररूप से विचरण करती हैं। इन परियों को खुश करने के लिए डोली चढ़ाई जाती है जिससे इनके प्रभाव से बचा जा सके।

व्यापार के दौरान भूत–प्रेत सम्बन्धी लोक विश्वास

इस जनजाति का भारत –तिब्बत व्यापार से धनिष्ट सम्बन्ध रहा है। परिवार व गांव के कुछ ही लोग भेड़ बकरियों सहित पैदल मार्गों से होकर तिब्बत व्यापार के लिए जाते थे। लोग रास्ते के भोजन के लिए फाफर

का आटा, अर्जा, सात्तू, आदि साथ ले जाते थे। और जब किसी व्यक्ति पर भूत–प्रेत का छौल लग जाता तो फाफर के आटे से चौंर गाय एवं मनुष्य आकृति का नमूना बनाकर किसी ऊँचे स्थान पर रख कर प्रार्थना की जाती और कहा जाता कि *शो लागला शो, मी मसो चम्पा शो* अर्थात जो कुछ आप हैं आप को खाना दिया जा रहा है आप इसे खाओ और अपने प्रभाव से मुक्त रखना। यह प्रकिया भूत–प्रेत के प्रभाव से पूर्व एवं पश्चात दोनों स्थितियों में की जाती हैं। जो खाद्य सामग्री साथ ले जाते हैं उसे खाने से पूर्व उसमें से थोड़ा –थोड़ा हिस्सा भूत–प्रेतों के लिए रखा जाता है जिससे कि कोई व्यक्ति प्रभावित न हो। इस दिये जाने वाले हिस्से को मासाण बांठू (भूत–प्रेत का हिस्सा) कहा जाता है।

शीतकालीन आवास क्षेत्रों में भी भूत–प्रेत आदि अलौकिक शक्तियों पर विश्वास किया जाता है। यहां पर भी छौल लगना, नजर लगना, दोष आदि को माना जाता है। अलौकिक शक्तियों के कारण बीमार होने पर तंत्र–मंत्र आदि के द्वारा उपचार करने वालों का सहारा लिया जाता है। यह भी देखा गया है कि शीतकालीन आवास क्षेत्रों में उपचार के लिए गैर भोटिया उपचारकर्ताओं का सहारा लिया जाता है क्योंकि भोटिया जनजाति के गांव गैर भोटिया लोगों के गांवों से लगे हैं या निकट हैं। इस प्रकार भोटिया जनजाति में गैर भोटिया लोगों के सांस्कृतिक तत्व का मिश्रण देखने को मिलता है। ग्रीष्मकालीन आवास क्षेत्रों में अपनी विशिष्ट पारम्परागत तौर–तरीकों को अपनाया जाता है क्योंकि यहां पर अन्य लोग निवास नहीं करते है।

जड़ी–बूटी का उपयोग

ग्रीष्मकालीन आवास क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की जड़ी–बूटियां पायी जाती हैं जिनका उपयोग समय–समय पर किया किया जाता है। घरेलू उपचार के अलावा अधिकांश लोग सिर दर्द, बुखार, पेट दर्द इत्यादि के उपचार हेतु विभिन्न जड़ी–बूटियों का उपयोग करते हैं जिनमें से अतीस, कटुकी, चिरायता, डोलू, हत्था जड़ी आदि जड़ी–बूटियां मुख्य हैं। शीतकालीन आवास क्षेत्रों में अपने ज्ञान के अलावा गैर भोटिया लोगों से भी उपचार करवाया जाता है। इस क्षेत्र में उपलब्ध जड़ी–बूटियों जैसे आंक, आंवला, हरड़ा, बहेड़ा, किनगोड़, झेरण, नीम, बेल आदि के बारे में ज्ञान रखते हैं और समय–समय पर इनका उपयोग किया जाता है।

ऋतुकालीन आवास क्षेत्रों के निकट वर्तमान में प्रचलित चिकित्सा पद्धति के स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित किये गये हैं किन्तु उनमें समुचित व्यवस्था न होने के कारण छोटी –मोटी बीमारियों का उपचार हो पाता है। घरेलू नुस्खे एवं जड़ी–बूटियों के द्वारा कुछ बीमारियों का उपचार स्वयं भी करते हैं तथा भोटिया एवं गैर भोटिया उपचारकर्ताओं से उपचार करवाया जाता है। अलौकिक शक्तियों के द्वारा अस्वस्थ होने पर विशेषरूप से गैर भोटिया उपचारकर्ताओं की सेवायें ली जाती हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि वर्तमान में इनके ऋतुकालीन प्रवास दर में कमी आने के साथ इनके उपचार करने के तरीकों में भी परिवर्तन आया है।

निष्कर्ष

भोटिया जनजाति का ऋतुकालीन प्रवास उनके व्यवसाय के आधार पर दृष्टिगत होता है। इनके शीतकालीन आवास जनपद चमोली गढ़वाल की निचली घाटियों में स्थित हैं। पूर्व में यह आवास अस्थाई होते थे किन्तु वर्तमान में यह स्थाई रूप धारण कर गये है क्योकि तिब्बत के साथ व्यापार बन्द होने कारण इनके ग्रीष्मकालीन प्रवास भी प्रभावित हुआ है। इस व्यापार के बन्द होने से भोटिया लोगों के गढ़वाली व्यापारिक मत्रों एवं तिब्बती मित्रों के साथ सामाजिक सम्बन्ध समाप्त हुए है साथ ही इनकी आर्थिक स्थिति भी डगमगाई है। आर्थिक स्थिति को सुधारने कि लिए गृह ऊन उद्योग को बढ़ावा दिया और ऊनी कपडों के निर्माण में अपनी पहचान बनाई है। वर्तमान में प्रचलित चिकित्सा सुविधा का लाभ शीतकालीन क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक लिया जाता है।

इस जनजाति का ऋतुकालीन प्रवास के साथ–साथ बीमारी के उपचार में भी परिवर्तन दृष्टिगत होता है। ग्रीष्मकालीन आवास क्षेत्रों में स्थानीय जड़ी–बूटियों का उपयोग के साथ विभिन्न प्रकार के लोक विश्वासों पर आधारित प्रथाओं को भी अपनाये हुए हैं। वर्तमान में ऋतुकालीन प्रवास की दर में बहुत कमी देखने को मिलती है जो प्रवास होता भी है वह कम समय के लिए एवं अपने आस्था एवं विश्वास सम्बन्धी कियाकलापों को सम्पन्न करने के लिए होता है। शीतकालीन आवास क्षेत्रों में भोटिया एवं गैर भोटिया उपचारकर्ताओं से उपचार करवाया जाता है जिससे इस जनजाति में गढ़वाली संस्कृति के तत्व समाहित होना स्वाभाविक है। इस जनजाति के पारम्परिक चिकित्सा सम्बन्धी लोक विश्वास, कियाकलाप, जड़ी–बूटी का उपयोग इत्यादि में ऋतुकालीन प्रवास के साथ बदलाव देखने को मिलता है।

सुझाव

इस अध्ययन के आधार पर यह सुझाव दिया जा सकता है कि जनपद चमोली गढ़वाल के नीति तथा माणा क्षेत्र के प्रतिबन्धित भारत–तिब्बत व्यापारिक मार्गों को पूर्व की भांति व्यापार के लिए खोला जाना चाहिए तथा ग्रीष्मकालीन क्षेत्रों में सम्पूर्ण सुविधा वाले स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित होने चाहिए जिससे इस जनजाति में ऋतुकालीन प्रवास की दर बढ़ेगी। पारम्परिक उपचार विशेषरूप से जड़ी–बूटी का ज्ञान जीवित रखने के लिए उपचारकर्ताओं को गोष्ठी एवं परिचर्चा में शामिल कर इनको प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

एटकिन्सन ई.टी. (1974) हिमालयन गजेटीयर, वा0–3, कास्मों पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

कुकरेती, के.डी. (1958) संजीवनी, अंक–4, रा0इ0का0 छिनका, चमोली, गढ़वाल।

खर्कवाल, एस.सी. एवं के.सी. पुरोहित (1991) संस्कृति भूगोल, नूतन पब्लिकेशन, कोटद्वार, पौड़ी गढ़वाल।

चौहान, ए.एस. (1999) रंडपा, नीती–माणाः तोलछा–मार्छा एवं जनजातीय परिदृश्य, हिन्द प्रिंटर्स, बरेली।

चौहान, विद्या सिंह एवं श्री राय (2009) भारत की जनजातियां (उत्तराखण्ड के विशेष संदर्भ में), ट्रांसमीडिया प्रकाशन, श्रीनगर, गढ़वाल।

जोशी ए.के. (1983) भोटान्तिक जनजाति, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

डबराल, एस.पी. (1958) उत्तराखण्ड के पशुचारक, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, पौडी गढ़वाल।

नास्वा, सुमेधा (2001) ट्राइब ऑफ उत्तर प्रदेश एण्ड उत्तरांचल, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

पंगती, एस.एस. (1992) मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

बंगवाल, के.के. (2000) चमोली गढ़वाल के भोटियाओं में परम्परागत चिकित्सा प्रणाली के विश्वास, अभ्यास एवं बदलती दिशाएँ, अप्र0 शोध प्रबन्ध, हे.न.ब. गढवाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल।

मुथारायप्पा, आर. (2000) ट्राइबल फर्टिलिटी, मोर्टिलिटी एण्ड हेल्थ केयर प्रैक्टिसेस, मित्त पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

वाडिया, डी.एन. (1963) जियोलोजी आफ इण्डिया, मेकमिलन एण्ड कम्पनी, लन्दन।

विद्यार्थी, एल.पी. (1975) भारतीय आदिवासी : उनकी संस्कृति और सामाजिक पृष्ठभूमि, हिन्दी भवन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

वदाकुमेचेरी, जोहन्सन (2003), ट्राइब्स एण्ड कल्चरल इकोलोजी इन सेन्ट्रल इण्डिया, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

हसनैन, नदीम (2010) जनजातीय भारत, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।